3

विशेष रूप से कमजोर जनजातीय समूह और उनके विकास संबंधी मुद्दे

डॉ. नीलांजन खटुआ

DOI: https://doi.org/10.65651/NP.978-93-5857-988-8.2025.34-47
ISBN: 978-93-5857-988-8

सार

यह शोधपत्र मुख्य रूप से विशेष रूप से कमजोर जनजातीय समूहों और विशेष रूप से पहाड़ी कोरवा जनजाति और चोलनायकन जनजाति के विकास संबंधी मुद्दों पर प्रकाश डालता है। जनजाति, विशेष रूप से 'आदिम' जनजातीय समूहों पर विचार करते समय, कुछ प्रमुख विशेषताएँ उभर कर सामने आती हैं, जैसे निरक्षरता, उत्पादन प्रणाली में आदिमता, आर्थिक रूप से पिछड़ापन और स्थिर जनसंख्या आदि। पहाड़ी कोरवा और चोलनायकन जनजाति के संबंध में भी ये असामान्य नहीं हैं।

जनजातीय समुदाय विभिन्न भू-जलवायु परिस्थितियों जैसे वर्षा वन, पहाड़ी जंगल, अनावृत जंगल वाली पहाड़ियाँ, मैंग्रोव वन में रहते हैं और शिकार से लेकर औद्योगिक श्रम तक विभिन्न सामाजिक-आर्थिक विकासों में भी पाए जाते हैं। किसी भी जनजातीय समूह के जीवन के तरीके को जाने बिना संबंधित लोगों की कोई भी विकासात्मक गतिविधियाँ करना कठिन है। जो लोग जनजातीय विकास विभाग में कार्य करते हैं उन्हें नृवंशविज्ञान संबंधी विवरणो का सम्यक ज्ञान होना चाहिए। आम तौर पर यह पाया गया है कि आदिम जनजातीय समूहों के लिए प्रारंभ की गई विशेष विकास एजेंसी की देखभाल के लिए एक नव-नियुक्त आईएएस अधिकारी को परियोजना अधिकारी के रूप में नियुक्त किया जाता है। प्रत्येक एजेंसी कार्यालय में एक विशेषज्ञ / नृवंशविज्ञानी की भी नियुक्त की जानी चाहिए, जो मानवविज्ञान विषय से हो तथा जनजातीय समूहों / जातीय समूह के बीच क्षेत्रकार्य में दक्ष और अनुभवी हो तथा अधीनस्थ अधिकारी के रूप में कार्य करें। क्रिया-उन्मुख अनुसंधान केवल आदिम समूहों की समस्याओं के समाधान और सरकार का ध्यान

आकर्षित करने के लिए ही उपयोगी है। आर्थिक विकास के लिए उनके पारंपरिक कौशल को बढ़ावा देने पर भी ध्यान दिया जाना चाहिए।

मुख्य शब्द: आदिवासी विकास, पंचवर्षीय योजना, सांस्कृतिक पारिस्थितिकी, सामाजिक-सांस्कृतिक मुद्दे, नृजातीय अध्ययन

प्रस्तावना

विकास का तात्पर्य किसी जीव या सामाजिक व्यवस्था के निचले स्तर से उच्च स्तर की ओर व्यवस्थित गति और एकीकरण से है। अधिकांश लोग प्रति व्यक्ति आय या सकल राष्ट्रीय उत्पाद (जीएनपी) में वृद्धि को विकास का मानदंड मानते हैं, जबकि कुछ अन्य साक्षरता वृद्धि या स्वास्थ्य एवं स्वच्छता में वृद्धि को समूह के विकास का प्रतीक मानते हैं। विकास का संबंध किसी एक भाग या क्षेत्र के सुधार से है। मानवविज्ञानी मानते हैं कि विकास में किसी समूह के जीवन की गुणवत्ता में समग्र सुधार शामिल है। जीवन की गुणवत्ता भोजन, पानी, वस्त्र और आवास जैसी जीवन की बुनियादी आवश्यकताओं की उपलब्धता और पहुँच पर निर्भर करती है।

भौगोलिक अलगाव, आर्थिक पिछड़ापन, विशिष्ट संस्कृति, बड़े पैमाने पर समुदाय के साथ संपर्क करने में संकोच के बावजूद, आदिवासी लोग अपने स्वदेशी ज्ञान के लिए जाने जाते हैं ताकि वे अपने आवास में उपलब्ध भौतिक संसाधनों का न्यायिक उपयोग कर सकें, उनके आश्रय के निर्माण से लेकर जीवित रहने की दिन-प्रतिदिन की जरूरतों तक। आदिवासी समुदाय विभिन्न भू-जलवायु परिस्थितियों जैसे वर्षा वन, पहाड़ी जंगल, नंगे जंगल वाली पहाड़ियां, मैंग्रोव वन में रहते हैं और शिकार से लेकर औद्योगिक श्रम तक विभिन्न सामाजिक-आर्थिक विकासों में भी पाए जाते हैं। यह ध्यान रखना महत्वपूर्ण है कि आदिम जनजातीय समूह (पीटीजी) को अब विशेष रूप से कमजोर जनजातीय समूह (पीवीटीजी) के रूप में जाना जाता है। वर्तमान पत्र मुख्य रूप से विशेष रूप से कमजोर जनजातीय समूहों और विशेष रूप से पहाड़ी कोरवा जनजाति और चोलनायकन जनजाति के विकास के मुद्दों पर प्रकाश डालता है।

जनजाति, विशेष रूप से 'आदिम' जनजातीय समूहों पर विचार करते समय कुछ प्रमुख विशेषताएं सामने आती हैं, जैसे निरक्षरता, उत्पादन प्रणाली में आदिमता, आर्थिक रूप से पिछड़ापन और स्थिर जनसंख्या आदि। पहाड़ी कोरवा और चोलनायकन जनजाति के मामले में भी ये असामान्य नहीं हैं।

आदिवासी विकास के मुद्दों पर विचार करने से पहले, यह जानना ज़रूरी है कि आदिवासी जनसंख्या के उत्थान के लिए आदिवासी विकास हेतु कौन-कौन से दृष्टिकोण अपनाए गए हैं। संविधान लागू होने के बाद, पचास के दशक के आरंभ में विशेष बहुउद्देशीय आदिवासी खंडों और आदिवासी विकास खंडों के रूप में विशेष कार्यक्रम शुरू किए गए। ये क्षेत्रीय विकास के दृष्टिकोण

पर आधारित थे। ये कार्यक्रम चौथी पंचवर्षीय योजना के अंत तक जारी रहे और इनका उद्देश्य देश की कुल आदिवासी जनसंख्या का केवल 40 प्रतिशत भाग ही कवर करना था।

पंचवर्षीय योजना (पाँचवीं योजना) में एक नया दृष्टिकोण अपनाया गया, जिसमें उन सभी क्षेत्रों की स्पष्ट रूप से पहचान की गई जहाँ जनजातीय आबादी 50 प्रतिशत से अधिक थी। इस नए कार्यक्रम के अंतर्गत कुल जनजातीय आबादी का लगभग 65 प्रतिशत भाग शामिल किया गया। शेष 35 प्रतिशत जनजातीय आबादी अब भी उपेक्षित रह गई। इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए, संविधान की भावना के अनुरूप छठी योजना में एक संतोषजनक समाधान की कल्पना की गई, जिसके अंतर्गत संपूर्ण जनजातीय आबादी चाहे वह जनजातीय बहुल क्षेत्रों में निवास करती हो या इनके बाहर को उपयुक्त विकास कार्यक्रमों के अंतर्गत शामिल किया गया।

जनजातीय विकास की समग्र रूपरेखा को किसी क्षेत्र में जनजातीय जनसंख्या के वितरण के प्रकार और उनकी आर्थिक स्थिति के स्तर पर निर्भर करना होगा। जहाँ जनजातीय आबादी सघन रूप में निवास करती है, वहाँ 'क्षेत्र आधारित दृष्टिकोण' अपनाना उपयुक्त रहेगा, जिसमें जनजातीय समुदायों के समग्र विकास पर विशेष ध्यान दिया जाएगा। लेकिन जहाँ जनजातीय लोग बिखरे हुए रूप में रहते हैं, वहाँ उनके लिए 'समुदाय-आधारित कार्यक्रमों' को विकसित किया जाना चाहिए। वहीं, जो 'आदिम जनजातीय समूह' अत्यंत विशेष समस्याओं का सामना कर रहे हैं और जिनकी संख्या बहुत कम है, उनके लिए एक अत्यंत सावधानीपूर्वक 'व्यक्तिकेंद्रित दृष्टिकोण' अपनाना होगा, विशेषकर तब जब उनकी नाजुक सामाजिक-सांस्कृतिक संरचना पूरी तरह से टूटने के कगार पर हो। इस प्रकार जनजातीय समुदायों की समस्याओं को निम्नलिखित तीन वर्गों के आधार पर संबोधित किया जाएगा-

- जनजातीय सघनता वाले क्षेत्र
- अन्य क्षेत्रों में बिखरी हुई जनजातीय आबादी
- आदिम जनजातीय समुदाय

पाँचवीं पंचवर्षीय योजना के दौरान लगभग 50 आदिम जनजातीय समूहों की पहचान की गई थी। उनकी अत्यंत दयनीय और संकटग्रस्त स्थिति को ध्यान में रखते हुए, इनके लिए विशेष रूप से पृथक् वित्तीय आवंटन किए गए, जिनमें राज्यों की भागीदारी पर ज़ोर नहीं दिया गया। दुर्भाग्यवश, ये कार्यक्रम संतोषजनक रूप से प्रगति नहीं कर सके।

सांस्कृतिक पारिस्थितिकी और आजीविका का स्वरूप

पारिस्थितिकी शब्द का तात्पर्य जीवों एवं उनके पर्यावरण के परस्पर संबंधों के अध्ययन से है, जिसमें किसी विशेष क्षेत्र की भौतिक विशेषताएँ तथा वहाँ पाई जाने वाली जीवन-प्रकार की

विविधता सम्मिलित होती है। *सांस्कृतिक पारिस्थितिकी* समाज और पर्यावरण के मध्य संबंधों के अध्ययन को कहा जाता है। नृवंशविज्ञानी *आजीविका के स्वरूप* का अध्ययन करते हैं, अर्थात विभिन्न समाजों में लोग अपनी खाद्य आवश्यकताओं की पूर्ति किस प्रकार करते हैं।

आदिम जनजातीय समूह अपने परिवेश को भोजन और आश्रय का स्रोत मानते हैं। यह परिवेश उन्हें शांतिपूर्ण जीवन प्रदान करता है। वे पर्यावरणीय संसाधनों का उपयोग केवल अपनी तात्कालिक आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु करते हैं। वे संसाधनों का दुरुपयोग कभी नहीं करते, और इस प्रकार का उपयोग *"सतत् आजीविका"* कहलाता है (रेड्डी, 2000, पृ. 32) । आदिकाल से ही जनजातीय समुदायों ने अपने आवासीय क्षेत्रों से एक गहरा आत्मीय संबंध स्थापित कर लिया है। यह संबंध केवल भौतिक नहीं, बल्कि सांस्कृतिक महत्त्व भी रखता है। जो विभिन्न विकास एजेंसियाँ (सरकारी एवं गैर-सरकारी) इन आदिम जनजातीय समूहों के बीच कार्यरत हैं, उन्हें इन सांस्कृतिक आत्मीयताओं के प्रति संवेदनशील और जागरूक होना चाहिए।

जंगलों में निवास करने वाले जनजातीय लोगों के लिए वन एक पूर्ण और समग्र संसाधन आधार है, जो उन्हें पीने का पानी, भोजन (फल, कंद, पत्तेदार सब्जियाँ, औषधियाँ), वस्त्र (पटसन और रेशों के रूप में) तथा आश्रय जैसी बुनियादी आवश्यकताओं की पूर्ति करता है। राष्ट्रीय वन नीति में अनुसूचित जनजातियों के लिए जो सुरक्षात्मक उपाय किए गए हैं, वे उनकी मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु पर्याप्त नहीं हैं। उन्हें वनों से संसाधन एकत्र करने के अधिकार पूर्ण रूप से नहीं दिए गए हैं, जो जनजातीय हितों के अनुकूल नहीं है।

नृजातीय अध्ययन की आवश्यकता

किसी भी जनजातीय समूह की जीवन-पद्धति को जाने बिना, संबंधित समुदाय के लिए कोई भी विकासात्मक गतिविधि प्रभावी ढंग से संचालित नहीं की जा सकती। जो लोग जनजातीय विकास विभाग में कार्य करते हैं, उन्हें जनजातीय समुदायों का नृजातीय विवरण जानना आवश्यक है। किसी भी जनजातीय समाज का नृजातीय विवरण *प्रशिक्षित मानवशास्त्रियों द्वारा गहन क्षेत्रीय अध्ययन* के माध्यम से एकत्रित प्रायोगिक तथ्यों पर आधारित होता है। विशेषकर *आदिम जनजातीय समूहों* के लिए विकास योजनाएँ बनाते समय, उस जनजाति की *पारिस्थितिकी*, *आर्थिक स्थिति* और *सामाजिक-सांस्कृतिक घटकों* का विशेष ध्यान रखा जाना चाहिए।

आमतौर पर यह देखा गया है कि *विशेष विकास एजेंसी* की देखरेख के लिए एक *नव नियुक्त आईएएस अधिकारी* को *परियोजना अधिकारी* के रूप में नियुक्त कर दिया जाता है। ऐसी प्रत्येक एजेंसी कार्यालय में एक *विशेषज्ञ/नृजातीयविद्* को अधीनस्थ अधिकारी के रूप में नियुक्त किया जाना चाहिए, जो मानवशास्त्र विषय का जानकार हो और जिसे जनजातीय या जातीय समूहों के बीच क्षेत्रीय अनुसंधान करने का व्यावहारिक अनुभव हो। इसके अतिरिक्त, किसी भी प्रकार के विकास कार्य के लिए *शोध-आधारित निष्कर्षों* की आवश्यकता होती है। *जनजातीय विकास* के

संदर्भ में *मानवशास्त्री* ऐसे शोधकर्ता माने गए हैं जो प्रशासक एवं योजनाकार दोनों की भूमिका सफलतापूर्वक निभा सकते हैं।

यह उल्लेख करना अत्यंत महत्त्वपूर्ण है कि सर हर्बर्ट रिस्ले ने 1901 में भारत का नृजातीय सर्वेक्षण आरंभ किया था, और उनकी मानवशास्त्रीय शोध को भारत सरकार की *आधिकारिक मान्यता* प्राप्त हुई थी। भारत सरकार के निर्देशों के अनुसार, अधिकांश *प्रांतों* और *देशी रियासतों* ने नृजातीय अधीक्षक की नियुक्ति की, जिनमें अधिकांश *भारतीय सिविल सेवा* के सदस्य थे। मद्रास में यह सर्वेक्षण डॉ. एडगर थर्स्टन द्वारा संचालित किया गया और कोचीन राज्य में डॉ. अनंतकृष्ण अय्यर को *नृजातीय अधीक्षक* के रूप में नियुक्त किया गया, जिन्होंने विभिन्न समुदायों का गहन नृजातीय अध्ययन किया।

जनजातीय जीवन में प्रशिक्षण की आवश्यकता

प्रत्येक जनजाति के अपने विशिष्ट सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक व्यवहार प्रतिरूप होते हैं। *शैजा (2003)* ने इस बात पर बल दिया कि जनजातीय जीवन और संस्कृति में प्रशिक्षण किसी भी विकास गतिविधियों की सफलता के लिए अनिवार्य शर्त है। जनजातीय लोगों के बीच काम करने वाले अधिकारियों को, चाहे वे कितने भी ईमानदार क्यों न हों, जनजातीय लोगों के जीवन और संस्कृति के प्रति प्रशिक्षित और अभिमुख होना आवश्यक है। नृवंशविज्ञान सर्वेक्षण और समस्या-उन्मुख केस अध्ययनों के माध्यम से वास्तविक क्षेत्र स्थितियों में प्रशिक्षण प्रदान किया गया है। प्रशिक्षण का मूल उद्देश्य जनजातीय जीवन शैली और संस्कृति के ज्ञान की सीमाओं का विस्तार करना है, ताकि वे उन जनजातीय लोगों के प्रति प्रेम और सम्मान की सच्ची भावना विकसित कर सकें जिनके बीच उन्हें काम करना है। इसलिए, महान भाग्य जनजातीय क्षेत्रों में काम करने वाले प्रशासकों, विकास कार्यकर्ताओं और अन्य सामाजिक कार्यकर्ताओं के दृष्टिकोण और गतिविधियों पर निर्भर करता है।

मध्य भारत की आदिम जनजातियाँ

यह देखा गया कि सामान्य जनजातीय उप-योजना की पद्धति कुछ जनजातीय समुदायों के कुछ वर्गों के लिए उपयोगी नहीं हो रही है क्योंकि ये समुदाय अतीत में उनके सापेक्ष पिछड़ेपन, अलगाव और उपेक्षा का शिकार रहे हैं । इन समुदायों को विभिन्न प्रकार की समस्याओं का सामना करना पड़ा और वे कृषि और तकनीकी विकास के विभिन्न स्तरों पर हैं। पाँचवीं पंचवर्षीय योजना (1974-79) के दौरान, पाँच जनजातीय समूहों, अर्थात् बैगा, पहाड़ी कोरवा, भारिया, सहरिया और अबूझमाड़िया को आदिम जनजातियों के रूप में पहचाना गया था। इन समूहों के लिए कार्यक्रमों की योजना बनाने और उन्हें लागू करने के उद्देश्य से, प्रशासनिक इकाई का सामान्य एकीकृत जनजातीय विकास कार्यक्रम (आईटीडीपी) ढाँचा अपर्याप्त पाया गया। इसलिए इनमें से प्रत्येक समुदाय के लिए पाँच अलग-अलग एजेंसियां पंजीकृत की गईं। छठी पंचवर्षीय योजना (1980-85) के दौरान, कमार

की पहचान की गई और उन्हें आदिम समूहों की सूची में शामिल किया गया। सातवीं पंचवर्षीय योजना (1986-1990) के दौरान बिरहोर को मध्य प्रदेश की आदिम जनजातियों की सूची में शामिल किया गया। इन आदिम समूहों का विकास लगभग पूरी तरह से परिवार लाभार्थी कार्यक्रमों के माध्यम से परिकल्पित किया गया था। आदिम समूहों के संबंध में मध्य प्रदेश सरकार के सामने एक महत्वपूर्ण प्रशासनिक समस्या एजेंसी के प्रशासनिक नियंत्रण के लिए अपनाई जाने वाली प्रणाली और पद्धति से संबंधित है। ये एजेंसियां स्वायत्त निकायों के रूप में पंजीकृत हैं, लेकिन कार्यक्रमों की समग्र योजना और कार्यान्वयन के लिए, आईटीडीपी के साथ उनका समन्वय बहुत आवश्यक है; अन्यथा, एजेंसी क्षेत्र में बुनियादी सुविधाओं को विकसित करने वाले कार्यक्रम मुख्य रूप से आईटीडीपी के पास ही रहने चाहिए। वास्तव में, परिवार लाभ उन्मुख कार्यक्रमों को लागू करने के लिए बुनियादी ढांचे का विकास लगभग एक पूर्वापेक्षा है, जिसे साथ-साथ शुरू किया जाना चाहिए। 2001 में नए राज्य छत्तीसगढ़ के गठन के बाद, राज्य में पाँच आदिवासी समूहों को पीवीटीजी के रूप में अधिसूचित किया गया है, अर्थात, अबुझमारिया, कमार, बैगा, बिरहोर और पहाड़ी कोरवा।

भारत सरकार द्वारा जारी आदिम जनजातियों के लिए योजना तैयार करने के सामान्य दिशानिर्देशों में कहा गया है कि:

- ❖ प्रत्येक समूह के लिए एक विशिष्ट विकास योजना होनी चाहिए।
- ❖ विकास योजना में विशेष रूप से पारिस्थितिकी तंत्र को ध्यान में रखा जाना चाहिए।
- ❖ लोगों की प्राथमिक शिक्षा को समूहों के विशिष्ट चरित्र और प्राकृतिक क्षमताओं पर ज़ोर देते हुए कल्पनाशील ढंग से व्यवस्थित किया जाना चाहिए; उच्च आयु वर्ग के व्यक्तियों के लिए उपयुक्त नागरिक शिक्षा कार्यक्रम की भी योजना बनाई जा सकती है।
- ❖ प्रथम चरण में, मूल कौशल के उन्नयन और पुनर्गठन तथा समूह की तात्कालिक आवश्यकताओं को पूरा करके विकास का प्रयास किया जाना चाहिए।
- ❖ उपयुक्त प्रशासनिक ढाँचा प्रस्तावित किया जाना चाहिए।

आदिम जनजातियों के निवास वाले क्षेत्र अधिकांशतः दुर्गम हैं। अनुभव बताता है कि सरकारी अधिकारियों की ओर से इन क्षेत्रों में तैनाती के प्रति काफी अनिच्छा है। सामाजिक कार्यों में लगे स्वयंसेवी संगठनों को अभी तक इन क्षेत्रों में काम करने के लिए प्रेरित नहीं किया गया है। आदिम जनजातियों के कार्यक्रमों के क्रियान्वयन हेतु निर्मित संगठनात्मक ढाँचा अभी भी अस्पष्ट है। यद्यपि युवागृह या छात्रावास, सामुदायिक शिकार, पारस्परिकता और विनिमय प्रणाली तथा जाति पंचायत जैसी पारंपरिक जनजातीय संस्थाएँ ऐसे समूहों के बीच मौजूद हैं, फिर भी उनका सहयोग और सहभागिता सुनिश्चित करने के लिए शायद ही कोई प्रयास किया गया हो।

आदिम जनजातियों के संबंध में कार्य को एक क्रियात्मक कार्यक्रम की प्रकृति में अधिक प्रवृत्त होना होगा। तिवारी (1984) ने सुझाव दिया कि निम्नलिखित बातों को ध्यान में रखते हुए विशेष विकास परियोजनाओं के बारे में विस्तृत जानकारी प्रस्तुत करना आवश्यक है:

- पारिस्थितिक संतुलन का ह्रास समुदाय की विकास दर को नकारात्मक रूप से प्रभावित करता है। झूम खेती करने वाले लोगों का पुनर्स्थापन *पारिस्थितिक संतुलन बनाए रखने* के लिए आवश्यक है।

- इन समुदायों के नियोजित विकास के लिए जनजातीय मूल्यों और संभावनाओं का वास्तविक और सूचित मूल्यांकन आवश्यक है।

- यह आम धारणा कि सड़कों के निर्माण से किसी क्षेत्र के आर्थिक विकास में स्वतः ही लाभ होता है, ऐसे जनजातीय क्षेत्रों के मामले में भ्रामक पाई गई है। वास्तव में, आंतरिक क्षेत्रों को खोलने से आदिवासियों का शोषण हुआ है।

- आदिम जनजाति विकास कार्यक्रमों को क्रियान्वित करने के लिए गठित एजेंसियाँ, (आई टी डी पी) या किसी अन्य संगठन के साथ कोई संबंध स्थापित करने में विफल रहीं।

- केवल 'जनजातीय शाखा' जैसी विशिष्ट एजेंसियाँ ही झूम खेती करने वालों (अबूझमाड़िया) और कारीगर समूह (कमार) की समस्या का समाधान कर सकती हैं।

पहाड़ी कोरवा - छत्तीसगढ़ का एक निजी जनजाति समूह

पहाड़ी कोरवा मध्य प्रदेश (अब छत्तीसगढ़) के सात सबसे कम ज्ञात, 'आदिम' आदिवासी समूहों में से एक है। सरकार द्वारा उन्हें सामाजिक अन्याय और सभी प्रकार के शोषण से बचाने और उनके जीवन स्तर को ऊपर उठाने के लिए विभिन्न विकास कार्यक्रम लागू किए गए हैं। 1978 में जशपुरनगर में पहाड़ी कोरवा विकास एजेंसी की स्थापना के बाद से कृषि, सिंचाई, पशुपालन, हस्तशिल्प, स्वास्थ्य, शिक्षा और रेशम उत्पादन जैसे लघु उद्योग के विकास पर विशेष ध्यान दिया गया है। बगीचा स्थित प्रखंड विकास कार्यालय के सहयोग से पहाड़ी कोरवा विकास एजेंसी उनके क्षेत्र में विभिन्न कार्यक्रमों का क्रियान्वयन करती है। निरक्षरता, उत्पादन और उपभोग का निम्नतम स्तर, पड़ोसी समुदायों द्वारा शोषण, कुपोषण, सूजाक और उपदंश जैसी बीमारियों से पीड़ित होना, कम उपजाऊ और अपर्याप्त भूमि जोत, पेयजल की कमी, उच्च शिशु मृत्यु दर (प्रति 1000 जीवित जन्मों पर 162) उनकी प्रमुख समस्याएँ हैं। पहाड़ी कोरवाओं के लिए, विकास का मतलब दिन में दो बार भरपेट भोजन प्राप्त करना है, जिससे वे खुश रहें और अपने पारिस्थितिक क्षेत्र में जीवित रहने के लिए पर्याप्त साधन प्राप्त करें। न तो वे लाभ के बारे में सोचते हैं और न ही कल के भविष्य के बारे में।

आवास की समस्या

परंपरागत रूप से, पहाड़ी कोरवाओं के घर स्थायी और अच्छी तरह से निर्मित नहीं होते, बल्कि अस्थायी रूप से कमज़ोर ढाँचे होते हैं। लेकिन एक घर के साथ हमेशा एक बाड़ी-भूमि होनी चाहिए। वे जंगल के बीच पहाड़ियों पर एकांत में रहना पसंद करते हैं ताकि अन्य समुदाय उन्हें परेशान न करें। इन सभी घरों में स्थायी दरवाज़े और खिड़कियाँ नहीं होतीं। इसके अलावा, उन्हें अपने जानवरों को सुरक्षित रखने में भी समस्या होती है।

कार्यान्वित योजनाएँ

इस आवास समस्या के समाधान के लिए इंदिरा आवास योजना लागू की गई। यह शत-प्रतिशत केंद्र प्रायोजित योजना है। इस योजना के अंतर्गत पहाड़ी कोरवाओं के लिए सरकार द्वारा पक्के भवन निर्मित किए जाते हैं और चयनित लाभार्थियों को दिए जाते हैं। पंडरापाट पंचायत में पहाड़ी कोरवाओं के लिए ईंटों से बने 20 कमरों के भवन बनाए गए।

इंदिरा आवास योजना की विफलता

पहाड़ी कोरवाओं को आवंटित या दिए गए एक कमरे वाले भवन स्वीकार नहीं हैं। इसके कई कारण हैं।

- उनकी कृषि योग्य भूमि इंदिरा आवास योजना के तहत बने घर के पास स्थित नहीं है।
- वे ऐसे घनी आबादी वाले क्षेत्र में रहना पसंद नहीं करते क्योंकि कमरे अन्य सरकारी अधिकारियों के आवासों के आसपास बने हैं और प्राकृतिक, शांत क्षेत्र में स्थित नहीं हैं।
- उनकी बसावट बिखरी हुई है। एक झोपड़ी से दूसरी झोपड़ी के बीच दूरी बनाए रखना आवश्यक है। लेकिन इंदिरा आवास योजना के तहत दो अज्ञात परिवारों के लिए आवंटित कमरे एक-दूसरे के बगल में केवल एक दीवार से अलग स्थित हैं।
- उन्हें ऐसा सीमेंट का ठंडा फर्श पसंद नहीं है, जो गर्मी और आराम का एहसास न दे।

स्वास्थ्य योजना

यह देखा गया है कि कुछ बीमार पहाड़ी कोरवा लोग डॉक्टर से परामर्श करते हैं, जबकि अन्य समान लक्षण होने के बावजूद ऐसा नहीं कर पाते। डॉक्टर से परामर्श न करने का प्रमुख कारण यह है कि गरीब पहाड़ी कोरवा सरकारी स्वास्थ्य सेवाओं में होने वाले चिकित्सा खर्च को वहन नहीं कर सकते। इसके अलावा, उन्हें डॉक्टर से मिलने के लिए 1-2 घंटे तक इंतजार करना पड़ता है, क्योंकि नजदीकी सिविल डिस्पेंसरी में केवल एक ही चिकित्सा अधिकारी उपलब्ध है। साथ ही, इस

सिविल डिस्पेंसरी में लंबी अवधि के उपचार के लिए बिस्तर की सुविधा नहीं होने के कारण मरीजों के लिए ठहरने की व्यवस्था भी उपलब्ध नहीं है। संचार सुविधाओं की कमी के कारण मरीज को परिवार के सदस्यों द्वारा पहाड़ी-जंगल क्षेत्र से 10-20 किलोमीटर की दूरी तय करनी पड़ती है। विशेषकर बरसात के मौसम में ऐसा होता है जब कच्ची सड़कों की स्थिति और भी खराब हो जाती है।

दो विभागों और अंतर-विभागों के बीच समन्वय और सहयोग की कमी इस स्वास्थ्य देखभाल योजना की असफलता का कारण बनती है। उदाहरण के लिए, सन्ना प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र (पीएचसी) और मिनी प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र, पंड्रापाट के पास कोई वाहन नहीं है, आपातकालीन अवधि में वे ग्रामीणों को यह संचार सुविधा प्रदान करने में असमर्थ हैं। भले ही बगीचा सीएचसी में दो वाहन (एम्बुलेंस) हैं, वे शायद ही सन्ना पीएचसी और मिनी पीएचसी पंड्रापाट को उपलब्ध कराते हैं। दवाओं और मेडिकल किट की आपूर्ति बहुत खराब है। यह भी देखा जाता है कि मरीज को पीएचसी आने के बाद अपने इलाज के लिए भुगतान करना पड़ता है, खासकर जब मरीजों को इंजेक्शन की आवश्यकता होती है। डॉक्टर या स्वास्थ्य कार्यकर्ता अपने इंजेक्शन (जो मेडिकल स्टोर से खरीदे जाते हैं) रखते हैं और जरूरत के समय उनका उपयोग करते हैं।

स्वास्थ्य केंद्र द्वारा आपूर्ति की गई दवाइयाँ स्वास्थ्य कार्यकर्ता को वितरित होने के तुरंत बाद अपनी समाप्ति तिथि खो देती हैं। यह भी देखा गया है कि स्वास्थ्य कार्यकर्ता कई बार समाप्ति तिथि वाली दवाओं को लेकर अपनी लाचारी दिखाते हुए, अपने घर के लिए रख लेती हैं। उन्होंने बताया कि साल में एक बार उन्हें प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्र से विशेष रूप से दवाइयाँ (गोलियाँ, कैप्सूल) दी जाती हैं। वितरण के 4-5 महीने बाद, समाप्ति तिथि समाप्त हो जाती है, लेकिन दवाइयाँ जल्दी उपयोग में नहीं आतीं। इसलिए, साल के बाकी महीनों में वह ग्रामीणों की स्वास्थ्य देखभाल के लिए अपनी खरीदी हुई दवाओं का उपयोग करती हैं। बहुउद्देशीय स्वास्थ्य कार्यकर्ताओं (एमपीएचडब्ल्यू) का पूरे सप्ताह का एक संक्षिप्त कार्यक्रम होता है। आमतौर पर देखा गया है कि वे साइकिल या पैदल ही गाँवों का दौरा करते हैं। चूँकि इन आदिम जनजातीय समूहों के प्रत्येक गाँव पहुँच मार्गों से ठीक से जुड़े नहीं हैं, इसलिए बहुउद्देशीय स्वास्थ्य कार्यकर्ता (एमपीएचडब्ल्यू) को, खासकर बरसात के मौसम में, काफी समस्याओं का सामना करना पड़ता है।

इस क्षेत्र में महिला एमपीएचडब्ल्यू सबसे ज्यादा पीड़ित हैं। पहाड़ी क्षेत्र, दुर्गम सड़क इन महिला कार्यकर्ताओं के लिए अपरिहार्य परिस्थितियां पैदा करती हैं। इसके अलावा, इन महिला कार्यकर्ताओं को 6-7 गांवों का दौरा करना पड़ता है। सन्ना पीएचसी में साप्ताहिक बैठक में भाग लेने के लिए, स्वास्थ्य कार्यकर्ता को हर सोमवार को सन्ना जाना पड़ता है। स्वास्थ्य कार्यकर्ता उसी दिन अपनी दवाइयां और टीके एकत्र करते हैं। हालांकि पंडरापाट में एक मिनी पीएचसी है, लेकिन इस मिनी पीएचसी के प्रत्येक कार्यकर्ता को साप्ताहिक बैठक और दवाओं के संग्रह के लिए पीएचसी सन्ना जाना पड़ता है। असमान सड़क के कारण महिला कार्यकर्ता कभी-कभी अपनी साइकिल से

फिसल जाती हैं और टीके, स्लाइड आदि को खराब कर देती हैं। साइकिल में वे टीके की किट ले जाती हैं, क्योंकि उनके पास कोई विकल्प नहीं है।

चूँकि कोई दवा की दुकान नहीं है, पहाड़ी कोरवाओं को दवा लेने और बीमारियों से मुक्ति पाने के लिए स्वास्थ्य कर्मियों पर निर्भर रहना पड़ता है। सुरक्षित पेयजल सुविधाओं का अभाव, स्वच्छता की अवधारणा के बारे में अनभिज्ञता, अपने पशुशाला के आसपास रहना, खराब हवादार घर, अशिक्षा, कुपोषण पहाड़ी कोरवाओं के बीच निराशाजनक स्वास्थ्य स्थितियों के संभावित योगदान कारक हैं। आमतौर पर देखा गया है कि आदिवासी ओझाओं पर उनके पारंपरिक विश्वासों के कारण, वे अपनी बीमारी के इलाज के लिए हर्बल ओझा, प्रेतात्मवादी, ओझाओं से परामर्श करते हैं। लोकप्रिय लोक क्षेत्रों में उपचार की विफलता उन्हें आधुनिक स्वास्थ्य देखभाल सेवाओं के उपयोग की ओर ले जाती है। कभी-कभी रोगी की स्वास्थ्य समस्या या बीमारी के बारे में धारणा आधुनिक स्वास्थ्य विशेषज्ञ के सामने स्पष्ट तस्वीर पेश नहीं कर पाती है। इसके परिणामस्वरूप रोगी के वास्तविक उपचार में अंतराल पाया जाता है।

पहाड़ी कोरवा आबादी पर किसी भी सार्वजनिक या निजी कार्रवाई के परिणाम

- वन नीति के नाम पर राज्य ने आदिवासियों की ज़मीनें अधिग्रहित कर उन्हें उनके प्राकृतिक आवासों से बेदखल कर दिया है।

- सदियों पुरानी झूम खेती (बेओंरा या दही), ईंधन की लकड़ी/वनोपज संग्रहण और शिकार पर प्रतिबंध ने उन्हें सीमित साधनों के साथ कृषि करने के लिए मजबूर किया।

- भूमि की निम्न गुणवत्ता, मवेशियों और बीजों की कमी और अज्ञानता

- पर्याप्त दवा/एक्सपायरी दवाओं की आपूर्ति का अभाव आधुनिक चिकित्सा के प्रति नकारात्मक दृष्टिकोण को जन्म दे रहा है।

- प्रशासनिक कर्मचारियों/सार्वजनिक वितरण प्रणाली की लापरवाही भी चिंता का एक अन्य कारण है।

- किसी भी प्रकार के ऋण का भुगतान न करने के बावजूद, लाभार्थियों को अन्य ऋण वितरित किए जाते हैं। तो कोरवाओं की आदत थी कि वे कभी कर्ज़ नहीं चुकाते थे। उन्हें हमेशा भरोसा रहता था कि सरकार उन्हें शत-प्रतिशत सब्सिडी वगैरह के साथ कर्ज़ देगी।

केरल की आदिम जनजातियाँ

केरल राज्य में पाँच आदिवासी समुदायों को विशेष रूप से कमजोर जनजातीय समूह (पीवीटीजी) के रूप में पहचाना जाता है। ये हैं कासरगोड जिले के कोरागा, मलप्पुरम जिले के नीलांबुर घाटी के

चोलनायकन, अट्टापडी जिले के कुरुम्बा, वायनाड, मलप्पुरम और कोझीकोड जिलों के कट्टुनायकन एवं पलक्कड़ तथा त्रिशूर जिले के कादर। ये पीवीटीजी राज्य की कुल अनुसूचित जनजाति आबादी का केवल 5.3 प्रतिशत हैं और 1996-97 में उनकी कुल अनुमानित जनसंख्या 16678 थी (सर्वेक्षण रिपोर्ट-2000)। यह सर्वेक्षण केरल अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति अनुसंधान, प्रशिक्षण और विकास अध्ययन संस्थान (KIRTADS), कोझीकोड द्वारा किया जाता है।

अब तक प्रत्येक विशिष्ट आदिम जनजातीय समूह (पीवीटीजी) के लिए अलग-अलग विशेष विकास योजनाएँ और उनके व्यय विवरण उपलब्ध नहीं हैं, क्योंकि विशेष रूप से पाँच आदिम जनजातीय समूहों कदार, कत्तुनायक्कन, चोलनायक्कन, कोरगा और कुरुंबा के लिए एक विशेष पीवीटीजी प्रकोष्ठ की स्थापना मार्च 2012 में की गई थी। यह प्रकोष्ठ केरल के आदिम जनजातीय समूहों पर केरल अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति अनुसंधान, प्रशिक्षण और विकास अध्ययन संस्थान, कोझिकोड द्वारा 2007–08 में किए गए बेसलाइन सर्वेक्षण और सिफारिशों के आधार पर गठित किया गया। तेरहवें वित्त आयोग ने आदिम जनजातीय समूहों के विकास के लिए पाँच वर्षों की अवधि में ₹148.00 करोड़ की धनराशि प्रदान की थी, ताकि स्वास्थ्य, मृदा संरक्षण, प्राथमिक शिक्षा, पेयजल और पोषण जैसे क्षेत्रों में अतिरिक्त हस्तक्षेप किया जा सके। इस योजना का कार्यान्वयन अनुसूचित जनजाति विकास विभाग, तिरुवनंतपुरम, केरल द्वारा किया गया।

केवल 2011 से 2015 तक की भविष्य की योजना राशि उपलब्ध थी । वर्ष 2012 तक इन जनजातीय समूहों के लिए जो भी विकास कार्य हुए, वे जनजातीय विकास कार्यालय के जनजातीय विकास अधिकारी (TDO) द्वारा समन्वित किए जाते थे।

चोलनायकन - केरल का एक निजी समूह

चोलनायकन जनजाति केरल के मलप्पुरम जिले की नीलाम्बुर घाटी के करुलाई और वज़िकादावु पर्वतमाला में निवास करते हैं। चोलनायकन की कुल अनुमानित जनसंख्या 281 है। वे अर्ध-खानाबदोश या अर्ध-घुमंतू जनजाति हैं। वे आमतौर पर नदियों के किनारे स्थित चट्टानी गुफाओं में रहते हैं। वे सामान्यतः नदियों के किनारे स्थित चट्टानी गुफाओं में निवास करते हैं। ये लोग वनों के विभिन्न क्षेत्रों में 2 से 7 एकल परिवारों के समूहों में क्षेत्रीय इकाइयों के रूप में वितरित हैं। चोलनायकन समुदाय की ये क्षेत्रीय इकाइयाँ बैंडस (Bands) कहलाती है । प्रत्येक समूह एक निर्धारित क्षेत्र में निवास करते है और उसी क्षेत्र में संचरण करता है जिसे त्सेनमम (tsenmam) कहा जाता है । त्सेनमम चोलनायकन समुदाय की क्षेत्रीय विभाजन की इकाई है । प्रत्येक त्सेनमम की सीमाएं पहाड़ों, नदियों, वृक्षों आदि जैसे प्राकृतिक अवरोधों द्वारा स्पष्ट रूप से चिन्हित होती है । प्रत्येक जेन्मन / चेम्मन /त्सेनमम का एक प्रमुख होता है जिसे त्सेनमक्करन कहा जाता है। प्रत्येक त्सेनमम को कई नाडु में विभाजित किया जाता है जिनके अलग-अलग नाम होते हैं ।

मंचेरी पुनर्वास गांव है जहां आईटीडीपी कार्यालय/विभाग ने वर्ष 2008-2009 में चोलानाइकन समुदाय के 18 परिवारों के लिए पक्के मकान बनाए थे। वर्तमान में 5 परिवार 5 घरों में रह रहे हैं, अन्य इमारतों को अछूता छोड़ दिया गया है। यहां यह बताना महत्वपूर्ण है कि चूंकि यह गांव रिजर्व फॉरेस्ट क्षेत्र के अंदर स्थित है और करीब 21 किलोमीटर दूर करुलाई नामक एक छोटे कस्बे से अलग-थलग है। इस क्षेत्र में जंगली हाथियों का खतरा आम बात है। इससे बचने के लिए सभी पाँच परिवारों ने मकानों की छत के ऊपर एक अस्थायी आश्रय बनाया है, जहाँ चढ़ने के लिए बाँस की बनी सीढ़ी का उपयोग किया जाता है। हालाँकि गाँव में एक खुला कुआँ है, परंतु उसका पानी सूख चुका है। अब ये परिवार एक झरने पर निर्भर हैं, जहाँ से प्लास्टिक पाइप के माध्यम से पानी को प्रत्येक घर तक पहुँचाया गया है।

नवनिर्मित घरों में बसे पाँच परिवार, मैलाडीपट्टी नामक बस्ती के निवासी हैं, जो मंचेरी पुनर्वासित कॉलोनी से 500 गज की दूरी पर स्थित है। अन्य लाभार्थी नवनिर्मित घरों को स्वीकार नहीं करते। इसका मुख्य कारण उनकी क्षेत्रीय सीमा प्रणाली है। प्रत्येक त्सेनमम (क्षेत्रीय इकाई) की सीमाएँ प्राकृतिक अवरोधों जैसे पहाड़ियों, नदियों, पेड़ों आदि द्वारा चिह्नित की जाती है। प्रत्येक त्सेनमम (क्षेत्र) में रहने वाले सदस्य उस क्षेत्र के प्राकृतिक संसाधनों का सामूहिक रूप से उपयोग करते हैं। अतः वे किसी अन्य क्षेत्र में जाकर निवास करना *अपनी परंपरा, स्वायत्तता और अधिकारों के विरुद्ध* मानते हैं।

समाधान

योजना संबंधित समुदाय की विश्वदृष्टि और मानवीय एवं भौतिक संसाधनों को ध्यान में रखकर बनाई जानी चाहिए। सरकार औषधीय पौधों के संरक्षण, जल संचयन तंत्र, पारंपरिक वास्तुकला, पवित्र घाटों के रूप में वनों के संरक्षण, विभिन्न समुदायों में प्रचलित अन्य पारंपरिक ज्ञान में उनकी क्षमताओं को उजागर करके समुदाय के लोगों को सशक्त बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती है। चयनित लोगों के बीच सामाजिक-आर्थिक जाँच/स्थिति को जाने बिना विकास गतिविधियाँ शुरू नहीं की जा सकतीं। क्रिया-उन्मुख अनुसंधान केवल आदिम समूहों की समस्याओं के समाधान और सरकार का ध्यान आकर्षित करने के लिए ही उपयोगी है। आर्थिक विकास के लिए उनके पारंपरिक कौशल - बाँस का काम, मछली पकड़ने के जाल बुनना, मिट्टी के खपरा बनाना आदि - को बढ़ावा देने पर ध्यान दिया जाना चाहिए। प्रौढ़ शिक्षा कार्यक्रम (भाषा के माध्यम से विकास योजनाओं के बारे में जागरूकता से संबंधित) विभिन्न विकास योजनाओं की सफलता में काफी हद तक सहायक हो सकते हैं। सामाजिक मानचित्रण और केंद्रित समूह चर्चा किसी भी विकास योजना के सर्वोत्तम मॉड्यूल को विकसित करने के सर्वोत्तम साधन हैं। अंत में, अनुवर्ती कार्रवाई/निगरानी और मूल्यांकन को किसी भी विकासात्मक गतिविधि के लिए सर्वोत्तम उपाय माना जाना चाहिए।

निष्कर्ष

आदिवासी समुदायों के लिए विकास का अर्थ है दिन में दो बार भरपेट भोजन प्राप्त करना एवं अपने पारिस्थितिक परिवेश में संतुलित जीवन निर्वाह करना। वे लाभ-हानि की मानसिकता से दूर रहते हैं तथा भविष्य की चिंता कम करते हैं। अज्ञानता, जागरूकता की कमी, सरलता और नशे की प्रवृत्तियों के कारण वे स्वयं को वंचित एवं हीन स्थिति में बनाए रखते हैं। इसलिए विकास सहायता योजनाएँ आदिवासी समुदायों की वास्तविक आवश्यकताओं और सांस्कृतिक मूल्यों पर आधारित होनी चाहिए। विशेष रूप से पहाड़ी कोरवा और चोलनायकन जैसी कमजोर जनजातियों के लिए योजनाएँ इस प्रकार बनाई जाएँ कि उनकी पारंपरिक अर्थव्यवस्था समाप्त न हो। पूर्व की योजनाएँ गलत योजना निर्माण, नौकरशाही की उदासीनता तथा सांस्कृतिक उपेक्षा के कारण असफल रहीं। अतः आवश्यक है कि विकास रणनीति प्राकृतिक पारितंत्र की पुनःस्थापना, पारंपरिक कौशलों के संवर्धन एवं आवश्यक कच्चे माल व मध्यम तकनीक की उपलब्धता पर केंद्रित हो ताकि आजीविका टिकाऊ बन सके।

संदर्भ

- कक्कोथ, एस. (2005). केरल की आदिम जनजातीय समूह: एक परिस्थितिजन्य मूल्यांकन, "स्टडीज़ ऑफ ट्राइब्स एंड ट्राइबल्स", 3(1), 47–55
- मजूमदार, डी. एन. (1944). "द फॉर्चून्स ऑफ प्रिमिटिव ट्राइब", लखनऊ: यूनिवर्सिटी पब्लिकेशन लिमिटेड।
- रैजादा, अजीत.(1983). "मध्यप्रदेश में जनजातीय विकास" इंटर-इंडिया पब्लिकेशन नई दिल्ली।
- राव, पी. वी. (1986). "जनजातीय विकास हेतु संस्थागत ढांचा", नई दिल्ली: इंटर-इंडिया पब्लिकेशन।
- रेड्डी, प्रकाश जी. (2000). आदिम जनजातीय समूह: अस्तित्व, संरक्षण और विकास "योजना", 31–34।
- राइज़ली, एच. एच. (1891). "बंगाल की जनजातियाँ और जातियाँ: नृवंशविज्ञान शब्दावली" (पृ. 511–519), कलकत्ता।
- रिज़वी, बी. आर. (1989). "छत्तीसगढ़ के पहाड़ी कोरवा" ज्ञान पब्लिशिंग हाउस नई दिल्ली।

- अनुसूचित जनजाति विकास निदेशालय. (2000).आदिम जनजातियों का सामाजिक-आर्थिक सर्वेक्षण (1996–97) की रिपोर्ट, तिरुवनंतपुरम।

- भारत सरकार, गृह मंत्रालय. (1977). छठी योजना में जनजातीय विकास हेतु एक दृष्टिकोण: प्रारंभिक परिप्रेक्ष्य, नई दिल्ली।

- संधवार, ए. एन. (1990). कोरवा जनजाति – उनका समाज और अर्थव्यवस्था, अमर प्रकाशन दिल्ली।

- शैज़ा, डब्ल्यू. (2003). जनजातीय जीवन और संस्कृति में प्रशिक्षण की आवश्यकता और उद्देश्य। एल. पी. विद्यार्थी (सम्पा.), एप्लाइड एंथ्रोपोलॉजी।

- विद्यार्थी, एल. पी. (2003). एप्लाइड एंथ्रोपोलॉजी इन इंडिया, किताब महल नई दिल्ली।